पक्षधर

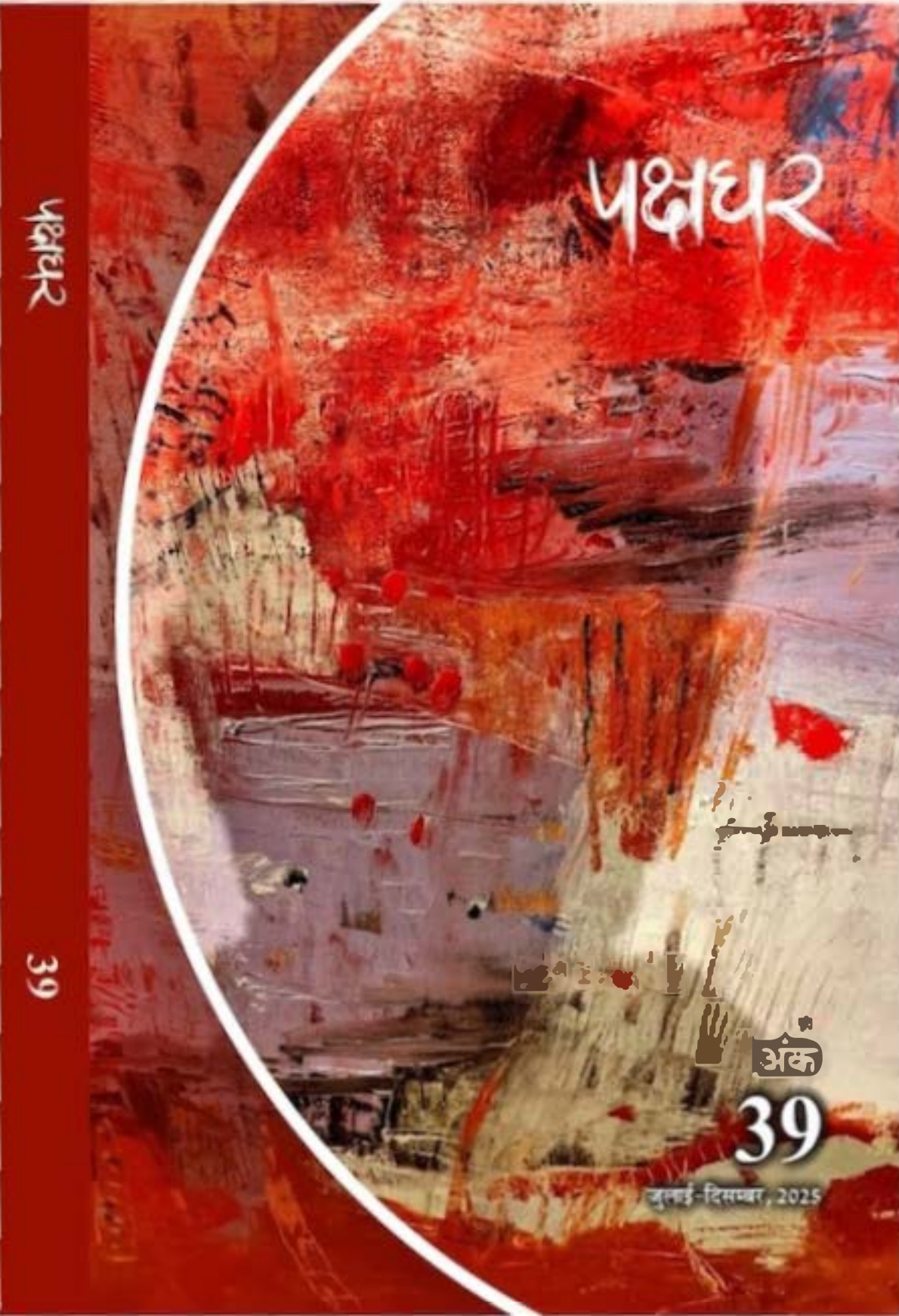

अंक 39

जुलाई-दिसम्बर, 2025

पक्षधर 39

संस्थापक संपादक : दूधनाथ सिंह

पक्षधर

प्रतिरोध की संस्कृति का रचनात्मक हस्तक्षेप

वर्ष : 19 अंक : 39 जुलाई–दिसम्बर, 2025

संपादक

विनोद तिवारी

पक्षधरता का संबंध मनुष्य के विश्वबोध और सद्-असद् विवेक-बुद्धि अर्थात् अंतरात्मा के विवेक से है।

अक्षर संयोजन
कम्प्यूटेक सिस्टम
ई-17, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-32

आवरण चित्र : लीलाधर मंडलोई

मूल्य :
एक प्रति : ₹ 200 (व्यक्तिगत) ₹ 250 (संस्थागत)
सदस्यता :
वार्षिक (व्यक्तिगत) : ₹ 500 (डाक खर्च सहित)
वार्षिक (संस्थागत) : ₹ 600 (डाक खर्च सहित)
पंचवार्षिक : ₹ 3000
आजीवन : ₹ 10000
विदेश के लिए : $ 100 (वार्षिक)

भुगतान हेतु बैंक-खाता विवरण :
A/c Name / No. : Pakshdhar / 31266280438
Bank : SBI / IFSC-SBIN0001067

संपादन/प्रकाशन : अवैतनिक/अव्यावसायिक

स्वामी-संपादक-प्रकाशक-मुद्रक **विनोद तिवारी, सी-4/604, ऑलिव काउंटी, सेक्टर-5, वसुंधरा, गाजियाबाद-201012** के लिए बी.के. ऑफसेट, एफ-93, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 से प्रकाशित और मुद्रित।

प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादक और लेखक की अनुमति के बिना प्रकाशित सामग्री के किसी भी तरह के उपयोग की अनुमति नहीं होगी।

सम्पर्क :

सी-4/604, ऑलिव काउंटी, सेक्टर-5,
वसुंधरा, गाज़ियाबाद-201012
मो. 9560236569
ई-मेल : pakshdharwarta@gmail.com
वेब पता : www.pakshdhar.com

PAKSHDHAR **: ISSN :** 2231-1173
A Bi-Annual Literary Magazine
Editor : Vinod Tiwari
Language : Hindi

अनुक्रम

संपादकीय

विनोद कुमार शुक्ल
(मनुष्य होने के अकलेपन में बहुत चुप बहुत धीरे चला) 5

एक कवि : एक राग

ग्यारह कविताएँ : **राजेन्द्र कुमार** 11

राजेंद्र कुमार : साधारणता के कवि : **विनोद दास** 23

शताब्दी-स्मरण

अमरकान्त की कहानियाँ : **सत्यप्रकाश मिश्र** 27

अँधेरे कोनों को चीन्हते कहानीकार अमरकांत : **सूरज पालीवाल** 36

व्याख्यान

लेखक और स्वतंत्रता : **अशोक वाजपेयी** 48

लेख

संस्कृति का विवेक और इतिहास बोध : **रवि श्रीवास्तव** 57

वर्तमान समाज और सूचना क्रांति : **अच्युतानंद मिश्र** 73

उन्नीसवीं सदी में धर्म, जाति, देशोन्नति और
बनारस की 'कुसुमांजली' : **सुजीत कुमार सिंह** 86

लंबी कविता

कोलंबस और कोलंबस : **अनुज लुगुन** 115

कहानियाँ

आखेटक : **राजेन्द्र लहरिया** 179

कलकत्ता 1978 : **वैभव सिंह** 189

छापा : **वीरू सोनकर** 199

काली फ्रॉक : **किंशुक गुप्ता** 204

कविताएँ

पाँच कविताएँ : **मनोज कुमार झा** 214

पाँच कविताएँ : **महेश वर्मा** 217

चार कविताएँ : **अनुपम सिंह** 222

पाँच कविताएँ : **ज़ुबैर सैफ़ी** 227

तीन कविताएँ : **गरिमा सिंह** 235

समीक्षाएँ

जब से आँख खुली है : **महेश कटारे** 243

सदिच्छा के बावजूद... : **अपूर्वानंद** 248

देह की देहरी पर परिवार और समाज का पहरा : **सियाराम शर्मा** 252

एक शहर, एक मुल्क की अनसुनी पदचाप : **अमिता शीरीं** 260

विवक्षित : **जोशना बैनर्जी** 264

एक पाठक की नोटबुक में कस्बों,
किताबों और सिनेमा की दुनिया : **राकेश कुमार मिश्र** 269

वर्तमान भारतीय किसान की त्रासदी वाया 'माटी राग' : **गाजुला राजू** 275

विनोद कुमार शुक्ल
(मनुष्य होने के अकलेपन में बहुत चुप बहुत धीरे चला)

ब्रिटिश दार्शनिक, निबंधकार और योरोपियन रेनेसाँ के एक महत्वपूर्ण किरदार फ्रांसिस बेकन का एक निबंध याद आ रहा है 'ऑफ स्टडीज़'। इस निबंध का एक महत्वपूर्ण कथन है : Reading maketh a full man, conference a ready man and writing an exact man. विनोद कुमार शुक्ल (1937-2025) इसमें तीसरी कोटि के व्यक्ति थे। उन्होंने लिखने के अलावा और कुछ नहीं किया। और आज जब वे हमारे बीच नहीं हैं तो हम देख पा रहे हैं कि अपने लेखन के बल पर वह साहित्य के विपुल संसार में, हमारे बीच जीवित बचे रहेंगे। उनकी एक प्रसिद्ध कविता (जिसकी आख़िरी दो पंक्तियों को शीर्षक बनाकर, अचल मिश्रा ने उन पर एक बहुत सुंदर डाक्यूमेंट्री बनाई है) की कुछ पंक्तियाँ याद आ रही हैं :

किसी होने वाले युद्ध से
जीवित बच निकलकर
मैं अपनी
अहमियत से मरना चाहता हूँ
कि मरने के
आख़िरी क्षणों तक
अनंतकाल जीने की कामना करूँ
कि चार फूल हैं
और दुनिया है।

अपनी अहमियत के साथ, अनंतकाल तक जीने की कवि की इच्छा, उसके न होने पर, उसके रचना कर्म की अहमियत से पूरी होती दिख रही है। मीडिया, सोशल मीडिया पर उनको चाहने वाले, पसंद करने वाले लोगों ने उन्हें जिस शिद्दत के साथ याद किया है, उससे एक लेखक की अपने पाठकों के बीच उपस्थिति और ज़िंदा बचे रहने का अंदाज़ा लगाया जा सकता है।

साहित्य-जगत में विनोद कुमार शुक्ल की छाप विशिष्ट और अनुपम है। उनका लेखन हर उस शोर के विपरीत है जो तरह-तरह के वादों, सिद्धांतों, बहसों, विमर्शों, आदि से लदा-फँदा है। उनका लेखन तरह-तरह के समकालीन नारों और विज्ञापनों के शोर-तमाशे से भी दूर है। इस मानी में अपनी राह के वे अकेले साधक हैं, चुपचाप आहिस्ता-आहिस्ता चलते चले जाने का सहज विश्वास—'जाते-जाते ही मिलेंगे लोग उधर के/जाते-जाते छूटता रहेगा पीछे/जाते-जाते बचा रहेगा आगे।' ऐसे में, ऊपरी तौर पर यदि कहना हो तो कहा जा सकता है कि उनकी कविताएँ वर्तमान से विच्छिन्न कविताएँ हैं। वर्तमान में मौजूद राजनीतिक-सामाजिक समस्याओं को वह अपनी कविता का विषय नहीं बनाते। यह सच भी है। लेकिन, उनकी कविताओं के पाठक यह जानते हैं कि उनकी कविताएँ अपनी अंतर्वस्तु में अपने समय से बाहर की कविताएँ नहीं हैं। प्रकृति, प्रेम, पर्यावरण, पृथ्वी, घर, परिवार, मानाधिकार, मूल्य-चिंता, नष्ट होते हुए को बचा लेने की चिंता, क्या समकालीन प्रश्न नहीं हैं? अगर हैं तो उनकी कविताएँ अपनी अंतर्वस्तु (कंटेंट) में समकालीन हैं, हाँ उनको रचने-बरतने का स्वभाव अलग है। अनुभूति का विशिष्ट भाषिक रूपान्तरण, उनके साहित्य को अलहदा बनाता है। ध्यातव्य है कि यह 'अनुभूति' किसी आध्यात्मिकता में निष्पन्न होने वाली अनुभूति नहीं हैं। उनके यहाँ जीवन, जगत और लोग ही महत्व पाते हैं। विनोद कुमार शुक्ल की कविताओं और उपन्यासों में संरचित जीवन-जगत भले ही प्रत्यक्ष-यथार्थ नहीं प्रतीत होता हो, पर उसमें जो अदृश्य जीवन है, वह स्वप्न नहीं यथार्थ के अनेक स्तरों वाला जीवन है। यही उनकी साहित्य-संवेदना और भाषा की उपलब्धि है। अपनी इसी भाषा-संवेदना के नाते वे हिन्दी के साहित्य जगत में अलग से पहचाने जाने वाले कवि-कथाकार हैं। वे जब यह कहते हैं कि 'उपन्यास लिखते समय मैं आसानी से कविता लिख पाता हूँ। उपन्यास लिखना उपन्यास के साथ-साथ कविता लिखना भी है' तो वे उस चमकीले, मोहक और दर्दनाक जीवन को, उसकी समग्रता में पकड़ने, जीने और व्यक्त करने की सृजनात्मक क्षमता को ही सामने रखने और उसे चिन्हवाने की इच्छा रखते हैं।

समकालीनता का अर्थ समसामयिक होना ही नहीं होता बल्कि मानव सभ्यता में कुछ शाश्वत प्रवृत्तियाँ और सवाल भी होते हैं, जो सदियों से बने हुए हैं। विनोद कुमार शुक्ल सभ्यता के विकास क्रम में उन शाश्वत प्रवृत्तियों और सवालों को तलाशने और रचने वाले कवि हैं। ऐसे में अगर यह कहना कि वह समकालीन प्रश्नों से बचकर एक अलग लोक में रमें कवि हैं, उचित नहीं। उनकी एक कविता है 'मैं अदना आदमी' उसमें एक पंक्ति आती है—'बाहर को कोई खटखटाता है।' विनोद कुमार शुक्ल अपने लेखन में 'बाहर' को हमेशा बाहर रखने की युक्ति तलाशते रहते हैं। उनके एक कम चर्चित किन्तु महत्वपूर्ण उपन्यास 'खिलेगा तो देखेंगे' के नायक गुरुजी प्राकृतिक आपदा के चलते, प्राथमिक पाठशाला के अपने घर के उजड़ जाने के बाद, पूरे परिवार समेत खाली और निष्क्रिय, किन्तु अपने होने के प्रभाव में अब भी मौजूद, पुलिस थाना को ही अपना घर बना लेते हैं। थाने में कैदियों को बंद कर रखने वाली ज़ेल-कोठरी को वे अपना कमरा बनाना चाहते हैं, किन्तु पाते हैं कि इस कोठरी को तो अंदर से बंद किया ही नहीं जा सकता, इसे केवल बाहर से ही बंद किया जा सकता है। बहुत सोचने के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि क्यों न इस कोठरी को, सलाखों से हाथ निकाल कर बाहर से ही बंद कर दिया जाये और इस तरह से बाहर को बाहर से ही बंद कर देते हैं। इस रूपक को समझने के लिए व्यक्ति की आज़ादी का मूल्य और मतलब समझना होगा। साथ ही उपन्यास में जिसे देश (Space) कहा जाता है, उसका सबसे भिन्न किन्तु नायाब उदाहरण भी है यह। वह बाहर को अछोर मानते हैं, इसलिए, उसे मापने का कोई भी एक

मापक, उसके अंतिम छोर तक पहुँचने की कोई भी एक दृष्टि उन्हें स्वीकार्य नहीं। वे इस बात में विश्वास करते हैं कि बाहर की यात्रा में भागदौड़, आपाधापी, तरह-तरह के करतबों आदि की गति तो दिखती है, पर गंतव्य का पता नहीं। जब उपन्यासकार गुरुजी के जरिए यह बात कहता है कि 'बाहर कहाँ तक निकलते। बाहर का क्या कोई अंत है?', तो उनकी अंतर्यात्रा और आंतरिकता, दोनों के मानी समझ में आते हैं। भीतर की यात्रा कर सकने वाला व्यक्ति ही जीवन-यथार्थ को, उसकी उलझनों, परेशानियों को, उसके मंगल-अमंगल को, भावना से आगे जाकर विवेक के भरोसे समझ कर उसका कोई हल पा सकता है।

विनोद कुमार शुक्ल को पढ़ते हुए यह धारणा बलवती होती है कि मनुष्य की अधिकांश गतिविधियाँ पारिवारिक और सामूहिक होती हैं और इस नाते सामाजिक भी होती हैं। आधुनिकता के विचार ने, या यों कहें कि औद्योगिक-विकास या पूँजीवादी-सभ्यता ने मनुष्य की सामूहिकता को, पारिवारिकता के दायरे को तहस-नहस कर, व्यक्ति को अकेले विनष्ट होने के लिए छोड़ दिया। भीतरी खालीपन और बाहरी अकेलापन इस सभ्यता के फलित रूप हैं। व्यक्ति के जीने और होने की अर्थहीनता, उद्देश्यहीनता को यह सभ्यता विकसित करती है और इसी को विकास कहती है। सामुदायिकता वाले समाजों में, जीने रचने वाले लोगों के बीच, पहले व्यक्ति, फिर घर, फिर परिवार को नष्ट करने के पीछे इस सभ्यता का बहुत बड़ा हाथ है। विनोद कुमार शुक्ल के लेखन का अधिकांश हिस्सा 'घर' को बचाने और पाने का है—वह चाहे कविता में हो अथवा उपन्यासों में। वह घर जिसमें चाँद, सूरज, तारे, आकाश, नदी, झरने, पेड़, पौधे चिड़िया आदि-इत्यादि, सब घर की चीज़ों की तरह हैं। परस्पर एक-दूसरे में रचे-बसे। घर पर उनकी अनेक कविताएँ हैं। 'दूर से घर को देखना चाहिए' कविता की इन अर्थवान पंक्तियों में मनुष्य कितना व्यापक से व्यापकतर हो सकता है, देखना चाहिए :

घर में अन्न-जल होगा कि नहीं की चिंता
पृथ्वी में अन्न-जल की चिंता होगी
पृथ्वी में कोई भूखा
घर में भूखा जैसा होगा
और पृथ्वी की तरफ़ लौटना
घर की तरफ़ लौटने जैसा।
घर का हिसाब-किताब इतना गड़बड़ है
कि थोड़ी दूर पैदल जाकर घर की तरफ़ लौटता हूँ
जैसे पृथ्वी की तरफ़।

उनके उपन्यासों 'नौकर की क़मीज़' 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' और 'खिलेगा तो देखेंगे' में 'घर' के एक नहीं अनेक, बहुविध दृश्य, अपने सुख, दुःख और संघर्ष के साथ महत्व पाते हैं। 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' सुखद दांपत्य अथवा इससे आगे बढ़कर कहें तो स्वकीया प्रेम का विरल महाकाव्य है। इस उपन्यास को लिखने के बाद उन्होंने कहा था—मैंने 'सुख' लिखा है। इसके पहले 'नौकर की क़मीज़' में वह 'दुःख' लिख चुके थे। 'खिलेगा तो देखेंगे' में वे दाम्पत्य-प्रेम के दोनों पहलुओं—स्वकीया और परकीया—का चित्रण करते हैं। आलोचकों ने इस दृष्टि से इन उपन्यासों का पाठ और विवेचन संभवतः नहीं किया है। 'दीवार में एक खिड़की रहती थी' के रघुबर प्रसाद और सोनसी के स्वकीया प्रेम की व्याख्या तो हुयी भी है पर 'खिलेगा तो देखेंगे' के गुरुजी के 'स्वकीया' और जिवराखन की पत्नी डेरहिन के 'परकीया' प्रेम की व्याख्या नहीं हुई है। उपन्यासकार ने 'रेडियो' के प्रतीक के सहारे, जिस